

सकलभुवनभव्यैः सेवितः श्रीजिनेन्द्रस्तदुदितवरधर्मो निर्मलः शर्महेतुः।
विशदतरसुखश्रीः प्राप्यते यत्प्रसादात्स भवतु मम शान्त्यै कर्मणां शान्तिकर्ता ॥१६॥
इति कथाकोशे भावानुरागरक्ताख्यानं समाप्तम्।

१०२. प्रेमानुरागरक्ताख्यानम्

संप्रणम्य जिनाधीशं प्रोल्लसद्धर्मनायकम्। प्रेमानुरागरक्तस्य रचयामि कथानकम् ॥१॥
विनीतविषये रम्ये साकेतापत्तनेऽभवत्। राजा सुवर्णवर्माख्यः सुवर्णश्रीप्रिय प्रियः ॥२॥
श्रेष्ठी सुमित्रनामा च सम्पदासारसंभृतः। प्रेमानुरागरक्तोसौ जैनधर्मे विचक्षणः ॥३॥
एकदा पूर्वरात्रौ च स्वगृहे शुद्धमानसः। कायोत्सर्गेण मेरुर्वा संस्थितो निश्चलस्तराम् ॥४॥
देवेनैकेन चागत्य भार्यावित्तादिकं तदा। हत्वा परीक्षितः सोपि चलितो न स्वयोगतः ॥५॥
ततो देवः समालोक्य स्थिरत्वं श्रेष्ठिनो महत्। कृत्वा तस्य सुमित्रस्य स्तुतिं शर्मशतप्रदाम् ॥६॥
स्वयं च प्रकटीभूय विद्यां गगनगामिनीम्। दत्त्वासौ शांकरीं भक्त्या स्वर्गलोकं ययौ मुदा ॥७॥
तं प्रभावं विलोक्योच्चैः सर्वे भव्यजनास्तदा। श्रीमज्जिनेन्द्रसद्धर्मे संजाता भक्तिनिर्भराः ॥८॥
केचिच्च मुनयः केचिच्छ्रावकव्रतमण्डिताः। केचित्सम्यक्त्वरत्नेन राजिता धर्मवत्सलाः ॥९॥

संसार के बड़े-बड़े महापुरुषों से पूजे जाने वाले, जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश किया पवित्र धर्म, स्वर्ग-मोक्ष के सुख का कारण है इसी के द्वारा भव्यजन उत्तम से उत्तम सुख प्राप्त करते हैं। यही पवित्र धर्म कर्मों का नाश कर मुझे आत्मिक सच्चा सुख प्रदान करें ॥१६॥

१०२. प्रेमानुराग-कथा

जो जिनधर्म के प्रवर्तक हैं, उन जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर धर्म से प्रेम करने वाले सुमित्र सेठ की कथा लिखी जाती है ॥१॥

अयोध्या के राजा सुवर्णवर्मा और उनकी रानी सुवर्णश्री के समय अयोध्या में सुमित्र नाम के एक प्रसिद्ध सेठ हो गए हैं। सेठ का जैनधर्म पर अत्यन्त प्रेम था। एक दिन सुमित्र सेठ रात के समय अपने घर में कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे। उनकी ध्यान-समय की स्थिरता और भावों की दृढ़ता देखकर किसी एक देव ने सशंकित हो उनकी परीक्षा करनी चाही कि कहीं यह सेठ का कोरा ढोंग तो नहीं है। परीक्षा में उस देव ने सेठ की सारी सम्पत्ति, स्त्री, बाल-बच्चे आदि को अपने अधिकार में कर लिया। सेठ के पास इस बात की पुकार पहुँची। स्त्री, बाल-बच्चे रो-रोकर उसके पाँवों में जा गिरे और छुड़ाओं, छुड़ाओं की हृदय भेदने वाली दीन प्रार्थना करने लगे। जो न होने का था वह सब हुआ परन्तु सेठजी ने अपने ध्यान को अधूरा नहीं छोड़ा, वे वैसे ही निश्चल बने रहे। उनकी यह अलौकिक स्थिरता देखकर उस देव को बड़ी प्रसन्नता हुई उसने सेठ की शतमुख से भूरी-भूरी प्रशंसा की। अन्त में अपने निज स्वरूप में आ और सेठ को एक साँकरी नाम की आकाशगामिनी विद्या भेंट कर आप स्वर्ग चला गया। सेठ के इस प्रभाव को देखकर बहुतेरे भाइयों ने जैनधर्म को ग्रहण किया, कितनों ने मुनिव्रत, कितनों ने श्रावकव्रत और कितनों ने केवल सम्यग्दर्शन ही लिया ॥२-९॥

जिनपतेः पदपद्मयुगं मुदा परमसौख्यकरं भवतारणम्।
 यजनसंस्तवनैर्जपनादिकैरिह भजन्तु ततः सुजनाः श्रिये ॥१०॥
 इति कथाकोशे प्रेमानुरागरक्ताख्यानं समाप्तम्।

१०३. मज्जनुरागाख्यानम्

सर्वदेवेन्द्रनागेन्द्र-समर्चितपदद्वयम्। नत्वा जिनं प्रवक्ष्येहं वृत्तमज्जनरागजम् ॥१॥
 उज्जयिन्यां महीनाथः सुधीः सागरदत्तवाक्। जिनदत्तवसुमित्रौ सार्थवाहौ गुणोज्ज्वलौ ॥२॥
 श्रीमज्जिनेन्द्रसद्धर्मे महामज्जनरागिणौ। दानपूजाव्रताद्यैश्च मण्डितौ श्रावकोत्तमौ ॥३॥
 उत्तरापथमुद्दिश्य वाणिज्यार्थं विनिर्गतौ। अवसीरमहाभूधमालादिवरभूधयोः ॥४॥
 मध्येऽटव्यां गृहीते च सर्वसार्थं कुतस्करैः। ततोऽटवीं प्रविष्टौ तौ दिग्विमूढौ बभूवतुः ॥५॥
 अपश्यन्तौ नरं कश्चिच्चारुमार्गोपदेशकम्। मज्जनरागरक्तौ द्वौ जैनधर्मे विचक्षणौ ॥६॥
 संन्यासेन स्थितौ जैनं स्मरन्तौ चरणद्वयम्। अहो भव्या भवन्त्युच्चैः सौख्ये दुःखे च सद्भियः ॥७॥
 तथान्यः सोमशर्माख्यो ब्राह्मणः कोऽपि तद्वने। दिग्विमूढो भ्रमन्कष्टं तयोः पार्श्वे समागतः ॥८॥

जिन भगवान् के चरण-कमल परम सुख के देने वाले हैं और संसारसमुद्र से पार करने वाले हैं, इसलिए भव्यजनों को उचित है कि वे सुख प्राप्ति के लिए उनकी पूजा करें, स्तुति करें, ध्यान करें, स्मरण करें ॥१०॥

१०३. जिनाभिषेक से प्रेम करने वाले की कथा

इन्द्रादिकों द्वारा जिनके पाँव पूजे जाते हैं, ऐसे जिन भगवान् को नमस्कार कर जिनाभिषेक से अनुराग करने वाले जिनदत्त और वसुमित्र की कथा लिखी जाती है। उज्जैन के राजा सागरदत्त के समय उनकी राजधानी में जिनदत्त और वसुमित्र नाम के दो प्रसिद्ध और बड़े गुणवान् सेठ हो गए हैं। जिनधर्म और जिनाभिषेक पर उनका बड़ा ही अनुराग था। ऐसा कोई दिन उनका खाली न जाता था जिस दिन वे भगवान् का अभिषेक न करते हों, पूजा प्रभावना न करते हों, दान-व्रत न करते हों। एक दिन ये दोनों सेठ व्यापार के लिए उज्जैन से उत्तर की ओर रवाना हुए। मंजिल दर मंजिल चलते हुए एक ऐसी घनी अटवी में पहुँच गए, जो दोनों बाजू आकाश से बातें करने वाले अवसीर और माला पर्वत नाम के पर्वतों से घिरी थी और जिसमें डाकू लोगों का अड्डा था। डाकू लोग इनका सब माल असबाब छीनकर हवा हो गए। अब ये दोनों उस अटवी में इधर-उधर घूमने लगे। इसलिए कि इन्हें उससे बाहर होने का रास्ता मिल जाये। पर इनका सब प्रयत्न निष्फल गया। न तो ये स्वयं रास्ते का पता लगा सके और न कोई रास्ता बताने वाला ही मिला। अपने अटवी के बाहर होने का कोई उपाय न देखकर अन्त में इन जिनपूजा और जिनाभिषेक से अनुराग करने वाले महानुभावों ने संन्यास ले लिया और जिन भगवान् का ये स्मरण-चिन्तन करने लगे। सच है, सत्पुरुष सुख और दुःख में सदा समान भाव रखते हैं, विचारशील रहते हैं ॥१-७॥

एक और अभागा भूला भटका सोमशर्मा नाम का ब्राह्मण अटवी में आ फँसा। घूमता-फिरता